संपादक
डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल
डॉ. मीना अग्रवाल

ISSN 0975-735X

शोध दिशा

54

UGC APPROVED CARE LISTED JOURNAL

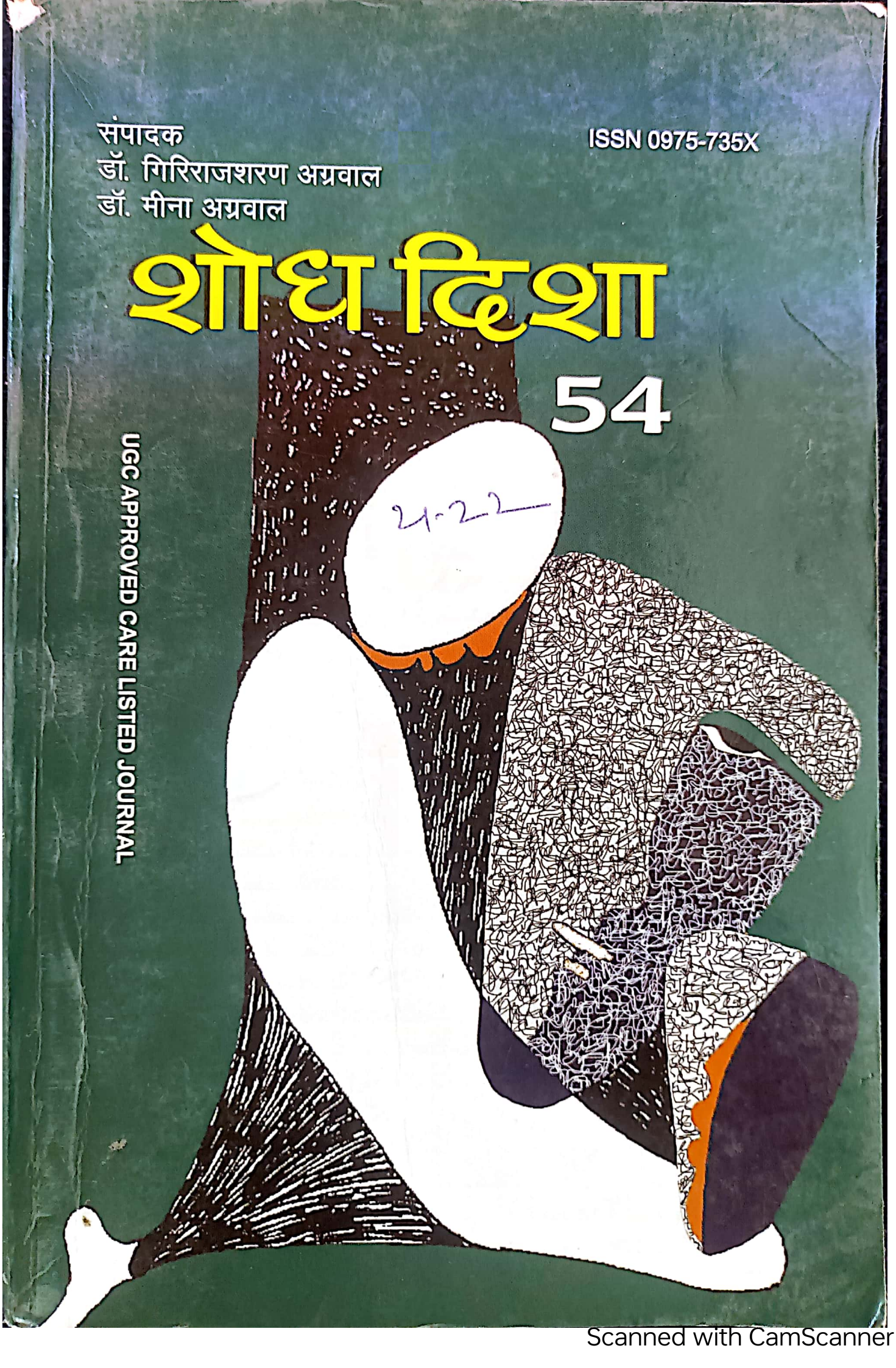

Scanned with CamScanner

अनुक्रम

विभाजन के बाद सिंधी लेखिकाओं का साहित्य में संघर्ष/ **देवी नागरानी** 9

ईंधन : महानगरीय जीवन से उपजा पारिवारिक संकट/ **हरप्रीत कौर** 15

उदयप्रकाश की कहानियों में निहित चिंतन के विविध आयाम/
डॉ॰ जगदीश बंसीलाल चव्हाण 19

अनिता भारती के काव्य में हाशिए का समाज/ **डॉ॰ कल्पना पाटील** 23

नासिरा शर्मा के उपन्यासों में चित्रित प्रदूषण/ **डॉ॰ लिजा अचचामा जार्ज** 28

ज्ञानप्रकाश विवेक की कहानियों में नारी-विमर्श/ **डॉ॰ महेश वसंतराव गांगुर्डे** 33

जीवन-मृत्यु में अर्थ खोजने का आख्यान : अंतिम अरण्य/
डॉ॰ प्रमोद गोकुळ पाटील 39

मिश्रबंधु और हिंदी आलोचना/ **डॉ॰ शत्रुघ्नकुमार मिश्र** 42

मैला आँचल और भारतीय जीवन/ **डॉ॰ सर्वेश्वर प्रताप सिंह** 47

पूर्वोत्तर समाज में आदिवासी साहित्य और उनकी संस्कृति/ **सुरेंद्र कुमार** 57

रामदरश मिश्र के उपन्यासों में ग्राम्यजीवन का समसामयिक यथार्थ/
डॉ॰ सुषमा दुबे 63

प्रवासी भारतीय पुरुष की विविध छवियाँ/
(दिव्या माथुर के कहानी-संग्रह 'मेड इन इंडिया' के संदर्भ में)/ **उपासना** 70

संस्कृत वाङ्मय में स्थानीय मान एवं अनंत (गणितीय संकल्पना) का प्रतिपादन/
डॉ॰ आयुष गुप्ता 76

डॉ॰ आदित्य प्रचंडिया की कथासृष्टि/ **डॉ॰ कृष्णगोपाल मिश्र** 79

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल की ग़ज़लों में महानगरीय सभ्यता का चित्रण/
डॉ॰ अभयकुमार रमेश खैरनार 84

हिंदी दलित कथासाहित्य में आरक्षण/ **एल॰ अनिल** 89

भावनाकुमारी की ग़ज़लों में सकारात्मक चिंतन/ **डॉ॰ अश्फाक इब्राहीम सिकलगर** 93

प्रयुक्ति की संकल्पना और हिंदी प्रयुक्ति, अर्थ स्वरूप और क्षेत्र/
डॉ॰ दिनकर प्रसाद 98

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल की व्यंग्य कविताओं में राजनीतिक बोध/
डॉ॰ दीपक कला विश्वासराव पाटील 105

महाकवि कालिदास-कृत कुमारसंभव में वर्णित प्रकृति-चित्रण/
डॉ॰ नरेंद्रकुमार वेदालंकार 111

'बाणभट्ट की आत्मकथा' में पुरुष चरित्र-शिल्प/ **डॉ॰ पल्लवी** 116

उदीयमान भारत में भारतीय संस्कृति की चुनौतियाँ एवं संभावनाएँ : एक विश्लेषण/
डॉ॰ प्रेरणा गौड़ 130

दक्खिनी का काल-विभाजन : एक अध्ययन/ **राजकुमार** 135

ISSN 0975-735X

Scanned with CamScanner

ज्ञानप्रकाश विवेक की कहानियों में नारी-विमर्श

डॉ॰ महेश वसंतराव गांगुर्डे

ज्ञानप्रकाश विवेक एक प्रतिबद्ध साहित्यकार हैं। अत: समाज में व्याप्त विभिन्न समस्याओं का चित्रण उनके साहित्य में प्रमाणिकता से हुआ है। एक उपन्यासकार, कहानीकार, ग़ज़लकार, कवि, संस्मरणकार तथा ग़ज़ल आलोचक के रूप में उनका योगदान उल्लेखनीय रहा है। उन्हें साहित्य-सृजन की प्रेरणा अपने पिता से प्राप्त हुई। स्वदेश दीपक, कृष्णचंदर, निर्मल वर्मा आदि भी उनके प्रेरणास्रोत रहे हैं। पाश्चात्य साहित्यकारों से भी वे प्रभावित रहे हैं। उनकी वैचारिक पृष्ठभूमि अत्यंत व्यापक है। आम आदमी उनके साहित्य का केंद्रबिंदु रहा है।

एक कहानीकार के रूप में हिंदी साहित्य में उनका विशिष्ट स्थान है। अब तक उनके ग्यारह कहानी-संग्रह प्रकाशित हुए हैं। जिनके शीर्षक इस प्रकार हैं–'अलग अलग दिशाएँ', 'जोसफ चला गया', 'शहर गवाह है', 'पिताजी चुप रहते ह', 'उसकी जमीन', 'इक्कीस कहानियाँ', 'शिकारगाह', 'सेवानगर कहाँ है', 'बदली हुई दुनिया', 'कालखंड' तथा 'चुप भी एक भाषा होती है'। इन संग्रहों की कहानियों में जीवन के विविध आयामों का चित्रण हुआ है। वृद्ध विमर्श, दिव्यांग विमर्श, नारी विमर्श, एकाकीपन, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, बाल मजदूरी, शोषण की प्रवृत्ति आदि का चित्रण उनकी कहानियों में परिलक्षित होता है। उनकी लगभग सभी कहानियाँ अत्यंत संवेदनशील एवं मर्मस्पर्शी हैं। प्रत्येक कहानी नई समस्या एवं बदलती हुई मानसिकता को दृष्टिकेंद्र में रखकर लिखी गई है। विशेष रूप से उनकी कहानियों में नारी विमर्श उभरकर सामने आता है।

हिंदी कथासाहित्य में नारी-जीवन की विभिन्न समस्याओं का चित्रण अत्यंत सूक्ष्मता से हुआ है। नारी पर होनेवाले अन्याय-अत्याचार, शारीरिक एवं मानसिक शोषण, बलात्कार, अपहरण, नारी-अस्मिता, नारी-अस्तित्व, नारी-संघर्ष आदि तमाम बातों का चित्रण समकालीन हिंदी साहित्य में दृष्टिगोचर होता है। ज्ञानप्रकाश विवेक का कहानी-साहित्य भी इसके लिए अपवाद नहीं है। उन्होंने भी अपनी कहानियों में नारी-जीवन की व्यथा-कथा का चित्रण मार्मिकता से किया है। नारी की ओर देखने का नजरिया बदलने की प्रेरणा उनकी कहानियों में दिखाई देती है। उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से नारी-जीवन के विविध आयामों पर प्रकाश डालने की पुरजोर कोशिश की है।

'काली लड़की' कहानी में एक युवती की मनोव्यथा को चित्रित किया गया है। कहानी की नायिका कामिनी कृष्णवर्णीय युवती है। उसे अपने रंग को देखकर हीनता महसूस होती है। उसके मन में बार-बार यह विचार आता है कि आईने को तोड़ दे। आईने का सामना होते ही वह उदास हो जाती है। वह चाहती है कि कार्यालय के युवा अधिकारी उसके पास बैठें, बतियाएँ।

एक दिन रीता ऑफिस में सहेलियों के साथ अपने हनीमून के अनुभव शेयर कर रही थी। तब कामिनी ने उसे टोका कि ऐसी बातें सार्वजनिक रूप से करना ठीक नहीं है। लेकिन रीता को

Scanned with CamScanner

टोकना कामिनी को महँगा पड़ा। क्योंकि रीता ने तुरंत कामिनी को काली बिल्ली कहकर अपमानित किया, 'मैं अपनी अंतरंग सहेलियों के बीच हनीमून की बातें कर रही हूँ। गैर मर्दों में नहीं बैठी। मैं हिप्पोक्रेटिक जिंदगी नहीं जीती...माईंड इट कामिनी! तेरी तरह फ्रस्ट्रेटिड नहीं हूँ... तेरी शादी नहीं हुई इसलिए हमें कहती फिरती है कि ऐसी बातें शोभा नहीं देतीं।...शोभनीय और अशोभनीय के उपदेश तू मत दे।...तू ब्लैक कैट क्या जाने हनीमून क्या होता है?'[1]

पिताजी कामिनी के विवाह को लेकर हमेशा चिंतित रहते हैं। कई लड़कों ने विवाह से मना कर दिया था। हर बार तैयार होकर लड़के वालों के सामने उपस्थित होना उसे अच्छा नहीं लगता। एक दिन जब लड़के वाले उसे देखने के लिए आते हैं, तब वह गुस्सा हो जाती है और अपने पिता से प्रश्न करती है, 'क्या बदशक्ल लड़की को जीने का अधिकार नहीं? क्या वह सम्मानित ढंग से नहीं जी सकती? क्या समाज में सब सुंदर हैं, कुरूपता विद्यमान नहीं? फिर... फिर पिताजी मेरे हिस्से में इतना अपमान क्यों, इतने तिरस्कार क्यों? हर बार मैं लड़के के सम्मुख जा बैठूँ, एक याचक की भाँति कि वह विवाह के लिए मुझे पसंद कर ले।...आखिर कब तक अपनी भावनाओं का रक्तपात करके यह सब सहना होगा...?'[2]

धीरे-धीरे कामिनी की मानसिकता में बदलाव होने लगा। उसने जीवन की वास्तविकता को स्वीकारना शुरू कर दिया। अब वह सजने-सँवरने लगी। अब उसमें आत्मविश्वास आने लगा। कार्यालय में नियुक्त एक नए लड़के ने आकर उसकी जिंदगी के अर्थ ही बदल दिए। परिणामत: कामिनी प्रसन्न रहने लगी और उसने कुंठित होना छोड़ दिया।

'जलजला' कहानी में बलात्कार पीड़ित युवती का चित्रण किया गया है। सविता के साथ तीन लड़कों ने बलात्कार किया। इस हादसे के बाद सविता उदास और खोई-खोई सी रहने लगी। उसे नॉर्मल करने के लिए परिवार के सदस्य कहीं ज्यादा प्यार करने लगते हैं, उसका ध्यान रखने लगते हैं। मनोचिकित्सक पी॰ दयाल को सविता की जिम्मेदारी सौंपी जाती है किंतु फिर भी सविता उदास रहती है।

जिस समय एक परिवार अपने बेटे के विवाह हेतु सविता के घर पहुँचता है, तब गली वाले लोग उन्हें सविता के बलात्कार की घटना के बारे में बताते हैं। वह कितनी चरित्रहीन है इसका वर्णन करते हैं। जिसके कारण लड़की देखने आया हुआ परिवार लौट जाता है। इस प्रसंग पर टिप्पणी करते हुए लेखक कहते हैं, 'जिन रिक्शों पर वे आये थे, उन्हीं पर वापस चले गए। बर्फी, काजू, नमकीन, चाय मेजों पर सजे-के-सजे रहे, एक-एक चीज घरवालों का मुँह चिढ़ाती रही। लड़की का पसंद आना, न आना दूसरी बात, लेकिन दरवाजे तक आकर लौट जाना, लड़की को चरित्रहीन का सर्टिफिकेट देकर, कितना मर्माहत कर डालता है।'[3]

इस कहानी के संदर्भ में विचार व्यक्त करते हुए डॉ॰ मधु खराटे कहते हैं, 'ज्ञानप्रकाश विवेक की जलजला कहानी वर्तमान की ज्वलंत समस्या पर केंद्रित है। बलात्कार, दैहिक शोषण नारी-जीवन की सबसे बड़ी समस्या है। एक बलात्कारित युवती की मानसिक स्थिति का यथार्थ चित्रण इस कहानी में है।'[4] निश्चित ही यह कहानी बलात्कार पीड़ित युवती की मनोव्यथा को रेखांकित करने वाली मार्मिक कहानी है।

'वजूद' कहानी 'बेटी बचाओ' का संदेश देनेवाली है। कनु एवं ध्रुव के दांपत्य जीवन में कनु का गर्भवती होना आनंददायी प्रसंग है, किंतु गर्भ के भीतर कन्याभ्रूण है यह पता चलने पर

ISSN 0975-735X

ध्रुव गर्भपात करवाना चाहता है जिसका कनु विरोध करती है। जिस समय ध्रुव कहता है कि मुझे लड़किया पैदा करनेवाली औरतें पसंद नहीं। तब अत्यंत क्रोधित होते हुए कनु कहती है, 'मैं...मैं एक स्त्री हूँ। जरखरीद जमीन नहीं जिस पर तुम अपनी मनचाही फसल उगाओ ...तुम मेरे वजूद को नकार रहे हो...मैं अब नहीं रहूँगी यहाँ।'[5] परिणामत: दोनों में तलाक हो जाता है। तलाक के उपरांत कनु दूसरा विवाह कर लेती है तथा अपनी बच्ची को जन्म देती है। यह कहानी नारी-चेतना को उजागर करती है।

'अर्थ' कहानी में एक संपन्न महिला के जीवन का चित्रण हुआ है। उसकी अपनी कुछ निजी पीड़ाएँ हैं, जिन्हें भुलाने के लिए वह समय बिताने हेतु शिमला जाती है। अपनी पीड़ा को कम करने के लिए वह सिगरेट और शराब में खो जाती है। उस स्त्री का वर्णन करते हुए लेखक लिखते हैं, 'वह जहाँ बैठी थी, उस सोफे पर उसका पर्स था, सॉफ्ट लेदर का कीमती पर्स। उसने पर्स खोला। डनहिल की सिगरेट का पैकेट, लाइटर निकाला। लाइटर से सिगरेट को जलाकर उसने कश लिया। फिर बाहर देखने लगी। सिगरेट पीते हुए अजीब-अजीब लगने लगी थी। वह कश लेती। धुआँ छोड़ती। बाहर देखती।'[6]

उसे हमेशा अकेलापन महसूस होता रहता। अपनी पीड़ा और अकेलेपन को दूर करने के लिए वह सिगरेट और शराब का सेवन करती है। उसकी मानसिक अवस्था को दृष्टि में रखकर लेखक कहते हैं, 'खामोशी में लिपटी कुलीनता का लेप भी अपने चेहरे पर लेप देती होगी, या फिर किसी रेस्तराँ में अपने सामने पड़े खाली सोफे को देखते हुए, ठंडे पड़ चुके मशरूम के सूप को धीरे-धीरे सिप करते हुए अपने भीतर के खालीपन से मुठभेड़ करती होगी...या फिर होटल के किसी कमरे में लाइटें जलाकर, सारी सात अपने भीतर के अँधेरे को तोड़ने का झूठा प्रयास करती होगी।'[7] अकेलेपन की पीड़ा का चित्रण करनेवाली यह कहानी अत्यंत मार्मिक है।

क्लब कहानी की नायिका भी अकेलेपन की शिकार है। वह भी अपने अकेलेपन को दूर करने हेतु सिगरेट और शराब का सहारा लेती है। उच्चवर्ग की नारी का चित्रण इस कहानी में हुआ है। उसका पति उच्च अधिकारी है किंतु वह उसे समय नहीं दे पाता। अत: वह अपने अकेलेपन की व्यथा को दूर करने के लिए निरंतर क्लब जाती है। वहाँ वह शराब पीकर, सिगरेट के कश लेकर एवं ताश खेलकर अपना समय व्यतीत करती है। अकेला होना उसे बहुत खलता है। उसका मानना है कि अकेला होना बहुत बुरा होता है। अपनी पीड़ा को व्यक्त करते हुए वह कहती है, 'कुछ चीजों का इस संसार में होना बहुत बुरा होता है, जिंदगी का होना...औरत का होना...तर्कशील होना...लोनलीनेस...आई मीन अकेला होना और...।'[8]

अर्थ एवं क्लब कहानियों में लेखक ने अकेलेपन की पीड़ा से ग्रसित नारियों का चित्रण किया है किंतु इस पीड़ा को दूर करने हेतु उनके द्वारा अपनाया गया मार्ग अनुचित है। स्त्री स्वतंत्रता का अर्थ कदापि स्वराचार नहीं होता। यही संदेश इन कहानियों के माध्यम से प्राप्त होता है।

'कहानी कैसी लगी' कहानी के अंतर्गत लेखिका नंदी के दयनीय जीवन का चित्रण हुआ है। एक दुर्घटना में वह अपाहिज हो जाती है। परिणामत: उसकी वाचा बंद हो जाती है। पति उससे संबंध-विच्छेद कर लेता है। अत: वह उपेक्षित जीवन जीने के लिए विवश हो जाती है। लेखक लिखते हैं, 'नंदी कार दुर्घटना में गंभीर रूप से घायल हुई है। वह बच तो गई है, घाव भी भर गए हैं, लेकिन समय जो घाव छोड़ गया है वह शायद कभी नहीं भर पाएँगे। नंदी के पति ने नंदी को

ISSN 0975-735X

Scanned with CamScanner

त्याग दिया है। यह बहुत दुर्भाग्यपूर्ण हुआ है।...जिस संवेदना की बात नंदी करती थी, वह संवेदना पथरा गई है। एक उपेक्षित जीवन जीना पड़ रहा है उसे।"[9] यह कहानी नंदी के कारुणिक जीवन पर प्रकाश डालने वाली कहानी है।

'मेरा सच' नायिका रीता के अस्तित्व-खोज पर आधारित कहानी है। वह महसूस करती है कि समाज में नारी का स्थान गौण है। माता-पिता द्वारा भाई-बहन (बेटा और बेटी) में किया जानेवाला भेदभावपूर्ण व्यवहार उसे बहुत खलता है। उसे लगता है कि नैतिकता के सारे पाठ सिर्फ लड़कियों को ही क्यों पढ़ाए जाते हैं। माता-पिता के भेदभावपूर्ण रवैये से दुखी होकर वह कहती है, 'वो एक साल आगे था, मुझसे। फेल हो गया। फिर हम दोनों बी॰कॉम॰ फर्स्ट में आ गए। इससे पहले उसने साइंस ली। मम्मी-पापा ने उसे अच्छी कोचिंग दिलवाई। बादाम...बेसन का हलवा... दोनों वक्त दूध...चिकन का सूप और बकरे का मगज!"[10]

अस्तित्व की तलाश करती रीता अपनी माँ से कहती है, 'मम्मी मुझे खड़ा होने दो...मुझे निडर होने दो मम्मी!...मैं घर के अंदर रहना चाहती हूँ, लेकिन रसोईघर बनकर नहीं...बेडरूम बनकर नहीं! मुझे दुनिया ढूँढने दो...। मुझे तलाश करने दो...तलाश यात्रा है मम्मी!"[11] रीता को इस बात का दुख है कि लड़की के भीतर से उसकी प्रतिभा, विकास और सृजनशीलता जैसे तत्त्व निकाल दिए जाते हैं। इस कहानी में अभिभावकों की बेटा-बेटी के संबंध में होनेवाली भेदभावपूर्ण नीति पर लेखक ने करारा प्रहार किया है।

'एक स्त्री का एकांत राग' कहानी में विधवा स्त्री की मानसिकता का चित्रण किया गया है। विधवा स्त्री का पति सेना में अधिकारी था। जो मर चुका है। उसका मानसिक संतुलन बिगड़ जाने के कारण वह स्त्री घर आए अजनबी को अपना पति प्रशांत मानकर व्यवहार करती है। कल्पनालोक में जीने वाली विधवा स्त्री के संबंध में विचार व्यक्त करते हुए कहानी में लिखा है, 'कमरे से दबे पाँव वापस चला आया। लौटते हुए मुझे लगा मैं बहुत अधिक विचलित हो रहा हूँ। प्रशांत से मेरा कोई रिश्ता नहीं। मैंने उसे कभी देखा भी नहीं। पता नहीं प्रशांत कब मरा? फिर मैं क्यों विचलित हो रहा हूँ। मुझे लगा मैं प्रशांत की मौत के कारण नहीं, बल्कि इस स्त्री के कारण हूँ। इसे पता है कि प्रशांत मर चुका है, फिर भी यह एक मायालोक में जी रही है।"[12]

'मारिया ने ऐसा तो नहीं चाहा था' कहानी में नायिका मारिया के एकाकीपन का चित्रण किया गया है। उसका पति मर चुका है, जिसकी वजह से उसे हमेशा खालीपन महसूस होता है। उनके खालीपन एवं अकेलेपन का वर्णन करते हुए कहानी में लिखा है, 'एक खालीपन सा खनकता है। एक दीर्घ श्वास लेती है मारिया, ओह! माइकेल तू तो मर गया। फ्री हो गया तू तो इस दुनिया-जहां से। मुझे छोड़ गया अकेला! एकदम तनहा! तेरे दोनों बेटे भी कितने सेलफिश निकले। जवान हुए और भाग गए विलायत!...माइकेल! तू क्या समझेगा कितना टॉर्चर देता है अकेलापन!"[13]

मारिया के घर के सामने बगीचा है। जहाँ आसपास के बच्चे खेलने आते हैं। वह उन्हें डाँटती-फटकारती है। एक दिन उसका भतीजा जिम पुलिस से शिकायत करता है। पुलिस बच्चों को पीटती है। पुलिस के डर से बच्चे वहाँ आना बंद कर देते हैं। बच्चों के न आने से मारिया उदास हो जाती है। उसने यह कभी नहीं चाहा था कि बच्चे वहाँ आना बंद कर दें। तब वह जिम को संबोधित करते हुए कहती है, 'जिम तूने यह क्या किया? जिम तुझे क्या मालूम ये बच्चे मेरी जिंदगी का सन्नाटा तोड़ते थे। मेरे एकांत को बाँटते थे। वे मुझे चिढ़ाते थे, फिर भी अच्छे लगते थे।

ISSN 0975-735X

जिम तू तो चला गया, उन बच्चों की चहक, उन बच्चों की महक भी छीन गया।"[14] एक नारी के खालीपन तथा अकेलेपन का जीवंत चित्रण इस कहानी में हुआ है।

'चुप भी एक भाषा होती है' कहानी की नायिका केतकी है। वह बोल नहीं सकती। निरंजन इस कहानी का नायक है। केतकी से निरंजन की मुलाकात एक होटल में होती है। उसे जब यह पता चलता है कि केतकी गूँगी है, तब वह बहुत व्यथित होता है किंतु केतकी अपनी शब्दहीनता से दुखी नहीं है।

केतकी अपने भाव एवं विचार व्यक्त करने के लिए हमेशा अपने पास नोटबुक रखती है और लिखकर अपनी बात कहती है। अपनी शब्दहीनता को स्वीकारते हुए वह कहती (लिखती) है, 'फ्रेंड! आपकी दुनिया आवाजों की दुनिया है। शब्दों की दुनिया। ध्वनियों की दुनिया। मैं इस दुनिया में नहीं हूँ। मेरे पास आवाज नहीं। मैं शब्दहीन हूँ।"[15]

केतकी को अपने गूँगेपन से कोई शिकायत नहीं है। पहले-पहल उसे अपने गूँगेपन के कारण हीनताबोध होता था, किंतु धीरे-धीरे उसने इस हीनताबोध को पराजित कर दिया। इस संबंध में वह कहती (लिखती) है, 'मैं आवाजहीन हूँ। अपनी इस हीनता से पहले मैं पराजित हो जाया करती थी। अब इस हीनता बोध को अक्सर...हाँ अक्सर, पराजित कर देती हूँ।"[16] शब्दहीनता के बावजूद केतकी किस तरह का खुशमिजाज जीवन जीती है, इसका मार्मिक चित्रण इस कहानी में हुआ है।

'दस्त-ए-तनहाई' कहानी मनुष्य के मन में होने वाली संशय की भावना पर आधारित है। आरंभ में सुजाता और विपिन का दांपत्य जीवन बड़े आनंद से बीत रहा था। बाद में विपिन सुजाता को समय नहीं दे पाता। वह सुजाता को अपना समय काटने के लिए रजा साहब के यहाँ जाते रहने के कहता है। सुजाता रजा साहब के घर आने-जाने लगी। कुछ दिनों बाद विपिन को सुजाता का रजा साहब के घर जाना अखरने लगता है। जबकि रजा साहब एक भले आदमी है। विपिन के मन में अपनी पत्नी पर रजा साहब को लेकर शक पैदा होता है, 'लेकिन विपिनजी को सुजाता का रोजाना रजा के घर जाना अखरने लगा। रजा साहब के घर की राह दिखानेवाले विपिनजी के मन में संशय की कई सारी छायाएँ उतर आई थीं। बंटी और काकू को लेकर उसके मन में विचित्र-सा भाव उभरता। क्या दोनों बेटे उनके अपने हैं?...कहीं रजा साहब से तो...।"[17]

संशय के चलते विपिन का मानसिक संतुलन बिगड़ जाता है। संशय के कारण मनुष्य की क्या हालत होती है तथा दांपत्य जीवन किस तरह तहस-नहस हो जाता है, इसका यथार्थ चित्रण इस कहानी में अत्यंत मार्मिकता से किया गया है।

नारी विमर्श को दृष्टिकेंद्र में रखकर लिखी गई कहानियों के संदर्भ में अपने विचार व्यक्त करते हुए ज्ञानप्रकाश विवेक लिखते हैं, 'स्त्री-जगत की ये कहानियाँ, स्त्री-जीवन के दुरूह, जटिल और मनोवैज्ञानिक संकटों से भरे उसके जीवन को व्यक्त करने की एक कोशिश है। वरना, स्त्री के जीवन-जगत को व्यक्त करना इतना आसान होता है क्या? नए समाज ने जहाँ अपनी भूमिका में बदलाव किया है, वहीं स्त्री भी अधिक प्रखर और चेतना संपन्न हुई है।"[18]

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि ज्ञानप्रकाश विवेक एक प्रतिबद्ध साहित्यकार हैं। इसीलिए उनकी कहानियों में हाशिए के समाज का चित्रण मुख्य रूप से दिखाई देता है। नारी का स्थान भी समाज में हमेशा गौण रहा है। नारी पर होनेवाले अन्याय-अत्याचार, बलात्कार, अपहरण, शारीरिक

ISSN 0975-735X

Scanned with CamScanner

और मानसिक शोषण, अस्तित्व की तलाश, अस्मिता का प्रश्न, उसका एकाकीपन, उसके साथ किया जाने वाला भेदभाव, समाज में उसे दिया जाने वाला गौण स्थान आदि तमाम बातों का चित्रण ज्ञानप्रकाश विवेक की कहानियों में अत्यंत सूक्ष्मता एवं मार्मिकता से हुआ है। नारी-जीवन के विविध पक्षों पर किया गया उनका लेखन नारी के प्रति नजरिया बदलने की प्रेरणा देता है।

संदर्भ

1. जोसफ चला गया, ज्ञानप्रकाश विवेक, पृ॰ 48
2. वही, पृ॰ 50
3. वही, पृ॰ 67
4. गजलकार ज्ञानप्रकाश विवेक, डॉ॰ मधु खराटे, पृ॰ 24
5. पिताजी चुप रहते हैं, ज्ञानप्रकाश विवेक, पृ॰ 39
6. शिकारगाह, ज्ञानप्रकाश विवेक, पृ॰ 11
7. वही, पृ॰ 20
8. बदली हुई दुनिया, ज्ञानप्रकाश विवेक, पृ॰ 12
9. उसकी जमीन, ज्ञानप्रकाश विवेक, पृ॰ 20
10. चुप भी एक भाषा होती है, ज्ञानप्रकाश विवेक, पृ॰ 93
11. वही, पृ॰ 96
12. वही, पृ॰ 116
13. वही, पृ॰ 119
14. वही, पृ॰ 126
15. वही, पृ॰ 132
16. वही, पृ॰ 132
17. बदली हुई दुनिया, ज्ञानप्रकाश विवेक, पृ॰ 109
18. चुप भी एक भाषा होती है, ज्ञानप्रकाश विवेक, भूमिका से

प्लॉट नं॰ 16-बी, रामकृष्ण नगर
सी॰बी॰ गार्डन के पास
कृष्णा एंटरप्राइजेज के पीछे
नंदुरबार, नंदुरबार 425412 **(महाराष्ट्र)**
मो॰ 9422895220

ISSN 0975-735X

Scanned with CamScanner

24.22

नेपाल, रूस, भारत के साहित्य एवं संस्कृति का अंतः सम्बंध

संपादक
डॉ॰ मोनिका देवी
प्रो॰ डॉ॰ संजय कुमार शर्मा
प्रो॰ डॉ॰ महेश गांगुर्डे

सह संपादक
डॉ. अलका यतीन्द्र यादव

Scanned with CamScanner

अनुक्रम

1 भारत के आदिवासी लोकगीतों में चित्रित आदिवासी संस्कृति
प्रोफेसर संजय कुमार शर्मा 13

2 आदिवासियों की जीवन शैली और परंपरा
डॉ. महेश वसंतराव गागुर्डे 23

3 सांस्कृतिक संदर्भ में अनुवाद
डॉ. अलका यतीन्द्रयादव 32

4 नेपाल, रूस, भारत साहित्य व संस्कृति का अंत
डॉ. बलराम गुप्ता 38

5 भारत-नेपाल संबंध : वर्तमान परिदृश्य
डॉ. राजपाल 46

6 नेपाल में भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि
डॉ. नजमाबानु ए. मलेक 53

7 भारत एवं नेपाल की संस्कृति का अंतःसंबंध
डॉ. एस. बी. पाटिल 58

8 रूस में भारतीय संस्कृति का योगदान लियो टॉलस्टाय के संदर्भ में
रामचन्द्र स्वामी 60

9 भारत और रूस की संस्कृति और साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन
डॉ. संगीता उप्पे 66

10 रूस में हिंदी साहित्य का प्रभाव
डॉ. अपर्णा चतुर्वेदी 72

11 आदिवासी तडवी-भिल्ल समाज की लोकसंस्कृति
डॉ. सुनीता नारायणराव कावळे 77

Scanned with CamScanner

आदिवासियों की जीवन शैली और परंपरा

-डॉ. महेश वसंतराव गागुर्डे

भूमिका

"आदिवासी समाज और संस्कृति के प्रति हमारे तथाकथित सुसंस्कृत समाज का रवैया क्या है? वो चाहे सैलानी -पत्रकार लेखक हों या समाजशास्त्री, आम तौर पर सबकी एक ही मिलीजुली कोशिश इस बात को खोज निकलने की रही है कि आदिवासियों में अद्भुत और विलक्षण क्या है? उनके जीवन और व्यवहार में आश्चर्य और तमाशे के लायक चीजों की तलाश और हमसे बेमेल और पराए पहलुओं को इकहरे तरीके से रोशन करने लोगों का ध्यान आकर्षित करने और मनोरंजन के लिए ही लोग आदिवासी समाज और सुसंस्कृति की ओर जाते रहे हैं। नतीजा हमारे सामने है : उनके यौन जीवन और रीति-रिवाजों के बारे में गुदगुदाने वाले सनसनीखेज ब्योरे तो खूब मिलते हैं, पर उनके पारिवारिक जीवन की मानवीय व्यथा नहीं। उनके अलौकिक विश्वास, जादू-टोने और विलक्षण अनूष्ठानों का आँखों देख हाल तो मिलता है, उनकी जिंदगी के हर सिम्त हाड़तोड़ संघर्ष की बहुरूपी और प्रमाणिक तस्वीर नहीं। वे आज भी आदमी की अलग नस्ल के रूप में अजूबा की तरह पेश किए जाते हैं। विचित्र वेशभूषा में आदिम और जंगली आदमी की मानिंद।"

परिचय

जनजातियों की सांस्कृतिक परंपरा और समाज -संस्कृति पर विचार की एक दिशा यहाँ से भी विचारणीय मानी जा सकती है। मानव विज्ञानियों और समाजशास्त्र के अद्येताओं ने विभिन्न जनजातीय समुदायों का सर्वेक्षण मूलक व्यापक अध्ययन प्रस्तुत किया है और उसके आधार पर विभिन्न जनजातीयों के विषय में सूचनाओं के विशद कोष हमें सुलभ है। पुनः इस अकूत शोध-सामग्री के आधार पर विभिन्न

Scanned with CamScanner

जनजातीय समूहों और समाजों के बारे में निष्कर्षमूलक समानताओं का निर्देश भी किया जा सकता है। लेकिन ऐसे अध्ययन का संकट तब खड़ा हो जाता है जब हम ज्ञान को ज्ञान के लिए नहीं मानकर उसकी सामाजिक संगति की तलाश खोजना शुरू करते हैं। ये सारी सूचनाएँ हमें एक अनचिन्हीं-अनजानी दुनिया से हमारा साक्षात्कार कराती हैं, किंतु इस ज्ञान का संयोजन भारतीय समाज में उनके सामंजस्यपूर्ण समायोजन के लिए किस प्रकार किया जाए, यह प्रश्न अन्य दूसरे सवालों से अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है। यहाँ समाज -चिंतन की हमारी दृष्टि और उसके कोण की वास्तविक परीक्षा भी शुरू हो जाती है। ठीक यहीं से सूचनाओं का विश्लेषण-विवेचना चुनौती बनकर खड़े हो जाते हैं।

किसी भी समाज का अतीत बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। तो भी शुद्ध अतीतजीवी होने की भी कोई तार्किकता नहीं हो सकती है। जनजातियों के संदर्भ में विचार करें तो यह सवाल और नुकीला हो जाता है कि क्या उन्हें आदिम मानव-सभ्यता के पूरात्तात्विक पुरावशेष के रूप में पुरातन जीवन-स्थिति में ही अलग थलग छोड़ दिया जाए या विज्ञान और तकनीकी प्रगति की आधुनिक व्यवस्था में समायोजित होने का अवसर भी दिया जाए? सवाल तो यह भी उतना है महत्त्वपूर्ण है कि क्या उनके विकास के नाम उन्हें आधुनिक जटिल राज्य तंत्र और समाज -व्यवस्था के सामने टूटकर विखरने के लिए छोड़ दिया जाए या उन्हें नए परिवेश में सहज गतिशील होने के लिए पर्याप्त अवसर दिया जाए?

आज जब औद्योगिक विकास के लिए खनिज सम्पदा और जंगल-पहाड़ के इलाके राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था के लिए अनिवार्यतः उपयोगी माने जा रहे हैं और ये सारी सहूलियतें इन्हीं आदिवासी अंचलों में सुलभ हैं तो क्या क्षेत्रीय या राष्ट्रीय हितों के लिए 10 प्रतिशत आदिवासियों को विस्थापित कर उनकी अपनी जीवन शैली, समाज-संरचना, सांस्कृतिक मूल्यों में बलात वंचित कर किया जाए? यानी आज यह सर्वोपरी आवश्यकता दिख रही है कि विकास की मौजूदा अवधारणा की एक बार फिर समीक्षा की जाए और नई आधुनिक व्यवस्था में जनजातीय समूहों के मानवीय अधिकारों की समुचित अभिरक्षा की जाए। तभी जजतीय संस्कृति या उसकी परंपरा के विषय में हमारी चिंता को एक वास्तविक आधार सुलभ होगा।

"आदिवासियों के आख्यान उनके मिथक, उनकी परंपराएँ आज इसलिए महत्त्वपूर्ण नहीं हैं कि वे वीते युगों की कहानी कहती हैं, बल्कि उनकी अपनी संस्थाओं और संस्कृति के एतिहासिक तर्क और वौद्धिक प्रसंगिकता के लिहाज से भी महत्त्वपूर्ण हैं। उनकी कलात्मक अभिव्यक्तियाँ, सौन्दर्यात्मक चेष्टाएँ और अनूष्ठानिक क्रियायें हमारी -आपकी कला-संस्कृति की तरह आराम के क्षणों को भरने

वाली चीजों नहीं हैं, उनकी पूरी जिन्दगी से उनका एक क्रियाशील, प्रयोजनशील और पारस्परिक रिश्ता है, इसीलिए उनकी संस्कृति एक ऐसी अन्विति के रूप में आकार ग्रहण करती है जिनमें उनके जीवन और यथार्थ की पूनार्चना होती हैं।"

संस्कृति

सांस्कृतिक परंपरा पर विचार करने से पहले यह परिभाषित कर लेना उचित प्रतीत होता है कि संस्कृति क्या है? संस्कृति कर लेना उचित प्रतीत होता है कि संस्कृति और लोकतंत्र में क्या अंतर है? जनजातीय संस्कृति और लोकसंस्कृति में भी कोई अंतर है या नहीं? विविध प्रकार की जीवन-शैलियों और सामाजिक परंपराओं में संस्कृति के जो स्थानिक और देशिक रूप दिखलाई पड़ते हैं, उनके वर्गीकरण और एकीकरण के क्या आधार हो सकते हैं। संस्कृति की जो व्याख्या मानवशास्त्री देते हैं वह स्वयं सांस्कृतिकर्मियों के लिए कितना अर्थपूर्ण है?

संस्कृति का सीधा-सादा अर्थ है परिष्कार या संस्कार। वस्तुतः परिमार्जित संस्कार ही संस्कृति है। इसके स्वरूप को स्पष्ट करते हुए डॉ॰ राम खेलावन पाण्डेय ने लिखा है कि "संस्कृति शब्द का प्रयोग अपेक्षाकृत अर्वाचीन है और अंग्रजी कल्चर का समनार्थसूचक। इसके संबंध की मान्यताओं में पर्याप्त मतभेद और विरोध हैं इसकी संबंध की मान्यताओं में पर्याप्त मतभेद और विरोध हैं इसकी सीमाएँ तक ओर धर्म का स्पर्श करती हैं तो दूसरी ओर साहित्य को अपने बाहूपाश में आबद्ध करती हैं। संस्कृति भौतिक साधनों के संचयन के साथ ही अध्यात्मिकता की गरिमा से मंडित होती है। वेश-भूषा, परंपरा, पूजा-विधान और सामाजिक रीति-विधान और सामाजिक रीति-नीति की विवेचना भी संस्कृति के अंतर्गत होती है। ..... प्रकृति की सीमाभारत के आदिवासी लोकगीतों में ..... आदिवासी संस्कृति : 25 ओं पर मनुष्य ने जो विजय चाही, उसका भौतिक स्वरूप सभ्यता, और आत्मिक, अध्यात्मिक अथवा मानसिक स्वरूप संस्कृति है। सभ्यता बाह्य-प्रकृति पर हमारी विजय का गर्वध्वज है और संस्कृति अंतः प्रकृति पर विजय-प्राप्ति की सिद्धि।"

संस्कृति की ऐसी परिभाषाएँ अनेक विद्वानों ने उपलब्ध कराई हैं जिनमें उसके इस व उस पक्ष या कई पक्षों का समन्वय स्थापित करें के चेष्टाएँ झलकती हैं। किंतु ऐसी परिभाषाएँ संस्कृति का खंडित अध्ययन करती हैं जबकि पिछली दो शताब्दियों में ज्ञान के विविध क्षेत्रों में कई नई परिभाषाएँ विकसित हुई हैं, जिनमें एक यह भी है कि मनुष्य संस्कृति निर्माता प्राणी है। संस्कृति की व्याख्या न तो केवल अनुवांशिक जैविकता के आधार पर की जा सकती है, न सिर्फ़ सामाजिकता के आधार पर। इसी तरह उसे सभ्यता के अलग-अलग खानों में बाँटकर भी नहीं समझा जा सकता।

Scanned with CamScanner

टायलर ने संस्कृति की जो व्यापक संकल्पना प्रस्तावित की है, उसमें कई मतभेदों का समाहार देखा जा सकता है। टायलर के आनुसर संस्कृति "वह जटिल ईकाई है जिसके अंतर्गत और अभ्यास सम्मिलित हैं जिन्हें मनुष्य समाज के सदस्य के रूप में अर्जित करता है।" इस तरह टायलर ने यह प्रतिपादित किया है कि संस्कृति सामाजिक परंपरा से अर्जित चिंतन, अनुभव और व्यवहार -मानसिक और क्रियात्मक व्यवहार की समस्त रीतियों की समष्टि है। यही संकल्पना परवर्ती मानव वैज्ञानिकों की कार्यप्रणाली का आधार बनी है। मैलिनोव्सकी की परिभाषा भी इससे मिलती जुलती है कि "संस्कृति के अंतर्गत वंशगत शिल्प-तथ्यों, वस्तुओं, तकनीकी प्रक्रियाओं, धारणाओं, अभ्यासों तथा मूल्यों का समावेश हो जाता है।" यही बात लिंटन, क्लकहॉन, क्रोबर आदि की परिभाषाओं में भी व्यक्त होती है।

वस्तुतः संस्कृति विषयक, चिंतन का क्षेत्र विभिन्न मतवादों से भरापूरा क्षेत्र है। मतान्तरों की परीक्षा का स्वतंत्र अध्ययन इस पुस्तक की सीमाओं में अभीष्ट नहीं है। इस संबंध में डॉ॰ दिनेश्वर प्रसाद की पुस्तक लोक साहित्य में इस विषय के विस्तार में जाकर विवेचन सुलभ और द्रष्टव्य है।

निष्पत्ति के रूप में यह कहा जा सकता है कि "विभिन्न संस्कृतियों की तुलनात्मक सांख्यिकी यह बतलाती है कि मानव जातियों एक ही वास्तविकता का मूल्यांकन अलग-अलग रूपों में करती हैं। सुन्दर और कुरूप , शिव और अशिव, सार्थक और निरर्थक आदि धारणाओं और मूल्यों के संबंध में उनमें पर्याप्त मतभेद हैं। ..... भारतीय दस दिशाओं की कल्पना करते छह की। यूरोप में लाल रंग शोक का प्रतिक है' किंतु प्लेन्स इंडियनों में विजय और उल्लास का। चीन में श्वेत रंग शोक का प्रतीक है जबकि चेरोकी जाति में दक्षिण दिशा का। भिन्नता की यह स्थिति कला संबंधी धारणाओं से लेकर में राग और लय दोनों महत्त्वपूर्ण हैं, लेकिन बहुत सीअ़रीकी संस्कृति एकापत्नित्व को आदर्श मानती है और इस्लामी संस्कृति बहूपत्नित्व को, जबकि भारत की कुछ जातियों में बहूपत्नित्व आदर्श भी है व्यवहार भी। इस तरह प्रतिमानों की सार्थकता स्थानीय या क्षेत्रीय होती है और उसके संबंध में हर संस्कृति के अपने तर्क होते हैं जिन्हें वह अकाट्य मानती है।"

संस्कृति के अध्येताओं के लिए सांस्कृतिक सापेक्षतावाद के अनेक अभिप्राय हो जाते हैं। इसी तर्क के आधार पर यह माना जाता है कि न तो किसी संस्कृति को श्रेष्ठ कहा जा सकता है और न हीन, न तो महत्त्वपूर्ण और न महत्त्वरहित। जब हम कुछ जातियों को आदिम कहते हैं तो संभवतः हमारा अभिप्राय यही होता है कि वे हमारे समकालीन जीवन की पूर्ववर्ती स्थिती के उदारहण हैं। लेकिन यह धारणा भी तथ्याधारित नहीं ठहरती। वस्तुतः विश्व के मानचित्र पर अलग-अलग भौगोलिक

परिवेश में इतनी किस्म की संस्कृतियाँ विद्यमान हैं, रही हैं की कहना पड़ता है कि हर समाज की संस्कृति उसका सांचा है और सामान्य संस्कृति के लक्षणों के निर्धारण में किसी भी एक संस्कृति का सांचा सम्पूर्ण नहीं हो पाता।

झारखण्ड सांस्कृतिक क्षेत्र

झारखण्ड सांस्कृतिक क्षेत्र का एक भाग भी कहा जाता रहा है, सांस्कृतिक दृष्टि से एक समृद्ध अतीत और वर्त्तमान का क्षेत्र है। अगर आपकी दृष्टि सिर्फ़ एक पर्यटक की दृष्टि नहीं है और उस पर औद्योगिक विकास के आंकड़े पढ़ने वाला चश्मा हो, तब आप झारखंडी संस्कृति की विशिष्ट पहचान से साक्षात्कार कर सकते हैं। यह क्षेत्र और यहाँ की मूलवासी जातियाँ जिनमें जनजातियाँ और सदानी समुदायों की साझेदारी है, सदियों से एक समरस और समतावादी समाज बनाकर रहते आए हैं।

यह इतिहास लगभग दो हजार साल पुराना इतिहास है जब सदानी जातियों की मूल जाती नागवंशियों ने छोटानागपुर में राज्य बनाया था। खुखर राज्य के पहले राजा नागवंशी फणीमुकूट राय थे जिन्होंने मुंडाओं के सहयोग से राज्य की स्थापना की थी। नाग जाति के बारे में अभी तक पर्याप्त शोध नहीं हुए हैं किंतु डॉ॰ अम्बेडकर, डॉ॰ कुमार सुरेश सिंह, डॉ॰ बी.पी॰ केशरी तथा कई अन्य विद्वानों ने जो प्रमाण और साक्ष्य जुटाए हैं वे नाग जाति के इतिहास के अस्तित्व को स्पष्ट स्थापित करते हैं। नाग जाति बहुत सुसंस्कृत, बहादुर और शांतिप्रिय जाति रही हैं इस जाति ने गौतम बुद्ध के नेतृत्व में सैकड़ों वर्षों तक ब्राह्मण धर्म के जातिभेद और छुआ -छूत के खिलाफ संघर्ष किया था। हिन्दूओं ने अपने बहुत से पर्व-त्योहार इस जाती के संस्कृति से लिए हैं प्रसिद्ध राजा शशांक इसी नाग जाति के थे।

सदानी जातियों के समानांतर इस क्षेत्र जनजातीय समाज और उसकी संस्कृति भी बहुत पुरानी है। मुंडा जनजाति के भूमिज लोगों ने सिंहभूम-वराहभूम के इलाके में भूमिज राज कायम किया था।" छोटानागपुर में पाए जाने वाले अनेक असुर स्थलों पर प्राप्त पुरातात्त्विक वस्तुओं के आधार पर यह कहा जाता है की सांस्कृतिक दृष्टि से छोटानागपुर उतना ही प्राचीन है, जितनी सिन्धु घाटी की सभ्यता। फिर भी साधारणतः बिहार का और विशेषकर छोटानागपुर का प्रारंम्भिक सांस्कृतिक इतिहास रहस्य के आवरण में ढंका हुआ। इसलिए इस क्षेत्र का इतिहास मुख्यतः वैदिक पौराणिक, जैन तथा बौद्ध साहित्य के छिटपुट अवलोकन, पुरातात्त्विक वस्तुओं के अध्ययन एवं क्षेत्रीय लोकसाहित्य और दंतकथाओं के विश्लेष्ण के आधार पर ही तैयार किया जा सकता है।..... ऐसा अनुमान किया जाता है कि मुंडा लोग इस

Scanned with CamScanner

क्षेत्र में ईसाई युग शुरू होने से पहले ही आकर बसने लगे होंगे। असुर संस्कृति के बारे मे यह कहा जा सकता है कि यह संस्कृति कम-से-कम कुषाण काल तक (लगभग 70 से 150 ई॰ सन) तो थी ही जैसा कि दो असुर स्थलों पर पाए जाने वाले कुषाण सिक्कों से पता चलता है। ऐसा मन जाता है कि असुर लोग भगवान शिव के बड़े भक्त थे तथा शिव लिंग की पूजा करते थे।"

"मानव वैज्ञानिक का एक समुदाय भारत को जनजातीय और गैरजनजातीय सांस्कृतियों के विलगाव और असंबद्धता पर इतना अधिक बल देता रहा है कि आज हम उनको एकदम भिन्न मानने लगे हैं। लेकिन ऐतिहासिक संदर्भ में विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि उतनी भिन्न और असंबद्ध नहीं हैं जितनी समझी और समझायी जाती हैं। बहुत सी जनजातियाँ हिन्दू समाज की जातियों में बदल गई हैं और बहुत सारी सांस्कृतिक विशेषताएँ उसकी सामान्य संस्कृति के अभिलक्षण बन गई हैं। जहाँ उनका स्थानांतरण जातियों में नहीं हुआ है, वहाँ भी गैरजनजातियों समुदायों से उनका सम्पर्क बना रहा है। यह जरूरी नहीं कि जो जनजातियाँ आज गैरजनजातियों साथ या समीप न रहकर उनसे दूर और अलग रही हैं, वे अतीत में उनके साथ या निकट नहीं रहती थीं।

उपलब्ध साक्ष्यों के अनुसार वे बहुत -से भारतीय प्रदेशों में शताब्दियों से लगभग एक परिमती भौगोलिक क्षेत्र में निवास करती रही हैं तो भारत के एक सीमांत से दुसरे सीमांत तक उनका आव्रजन ही हुआ है। प्रत्येक स्थिति में सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक बाध्यताओं के कारण, वे गैरजनजातीय समुदायों के सम्पर्क में आती रही हैं। यही नहीं उनका एक उल्लेख भाग गैरजनजातीय लोगों के साथ गांवों में निवास करता रहा है। इतिहास के विभिन्न कालों में आपसी संपर्कों से लेकर सन्निकटता और रक्त मिश्रण जैसी स्थितियों के कारण उन्होंने भारतीय संस्कृति के नाम से जानी जाने वाली संस्कृति का निर्माण और विकास किया है।"

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि झारखण्ड की जनजातीय संस्कृति और गैर जनजातीय सदानी संस्कृति के बीच परस्पर आदान-प्रदान का सिलसिला पुराना है। इसकी जाँच के आधार के रूप में भाषा का उपयोग जिन विद्वानों ने किया है, उनमें डॉ॰ कायपर, प्रोपिजूलिस्की, डॉ॰ प्रबोधचंद्र बागची, प्रो॰सिलवां लेवी और डॉ॰ दिनेश्वर प्रसाद के अध्ययन से यह तथ्य प्रमाणित होता है कि सांस्कृतिक संबंद्धता का इतिहास उतना ही पुराना है जितना इस दुर्गम क्षेत्र में मानव-विकास।

इस सांस्कृतिक संबद्धता की सदियों पुरानी परंपरा को डॉ॰ वीर भगत तलवार जैसे विद्वान झारखंडी बनाम ब्राह्मणवादी संस्कृति की संघर्ष यात्रा के रूप में विवेचित करते हैं। उन्होंने यह बताने की कोशिश की है। झारखण्ड की समतावादी संस्कृति

और भेदवादी ब्राह्मण वादी संस्कृति एक दुसरे की विरोधी हैं। कालान्तर में जो सांस्कृतिक प्रदूषण इस क्षेत्र की अनार्य संस्कृति में फैला है, वह ब्राह्मणवादी संस्कृति के हस्तक्षेप के कारण ही। उनका माना है की झारखंडी जातियों के ब्राह्मणीकरण की शुरुआत असल में झारखण्ड में सामन्ती राज्य सत्ताओं के उदय के बाद से हुई। अपने कथन के लिए साक्ष्य जुटाते हुए डॉ॰ तलवार, डॉ॰ कुमार सुरेश सिंह के चेरो लोगों पर किए गए शोध अध्ययन का हवाला देते हैं जिसमें जिसमें दिखलाया गया है कि झारखण्ड में विभिन्न सामन्ती राज्य कायम हुए तो उनके राजपरिवार ही, जो बाकी जनता पर अपनी श्रेष्ठता को साबित करना चाहते थे, ब्राह्मणवादी संस्कृति को लाने के माध्यम बने। एक ही कबीले के शेष लोगों से खुद को ऊंचा घोषित करने के लिए अपना संबंध ब्राह्मणवाद से जोड़ा। इस काम के लिए ब्राह्मणवाद ही सबसे उपयोगी व्यवस्था थी क्योंकी यह सिर्फ़ ब्राह्मणवाद ही है जो समान लोगों के बीच ऊँच-नीच की धारणा को पैदा करता है और उस भेद को कायम करने के लिए धर्म का पवित्र आधार पेश करता है। डॉ॰ कुमार सुरेश सिंह इस प्रक्रिया को सांस्कृतिकरण कहते है।

डॉ॰ तलवार पूछते हैं-"और इस सांस्कृतिककरण का नतीजा क्या निकला? सदान कबीला दो भागों में बंट गया। राजपरिवार से जुड़े सदान ब्रह्माणवादी संस्कृति के एंजेंट बने और अपने को बाकी सदानों से श्रेष्ठ समझने लगे तथा राजपरिवार द्वारा शासित होने वाले अशिक्षित, निर्धन और गरीब सदान जो आदिवासियों से भी अधिक खराब अवस्था में रहते हैं। सदान जब झारखण्ड में आए थे तब एक कबीला थे, उनमें जाति -प्रथा नहीं थी। ब्राह्मणवाद ने उनके अंदर जाति-प्रथा पैदा की और कुछ को ब्राह्मण, कुछ को क्षत्रिय, कायस्थ, वैश्य और बाकी को शूद्र घोषित कर दिया। वराहभूम में सामन्ती राज खड़ा करने वाले भूमिज दो भागों में बंट गए -राजपरिवार से जुड़े सरदार भूमिज और बाकी मामूली भूमिज।"

अब तक के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि छोटानागपुर की संस्कृति, जिसे झारखंडी संस्कृति की पहचान और नाम भी दिया जाता है, एक पुरानी संस्कृति है। उसे इस भौगिलिक क्षेत्र में आर्य मूल के नागवंशी सदान जातियों और मुंडकुल के जनजातीय समुदायों ने मिल-जुलकर श्रम प्रधान समतावादी जाति चेतना से रहित संस्कृति के रूप में विकसित किया था। यों तो इस क्षेत्र की विशिष्ट संस्कृति शेष भारतीय संस्कृति के जीवन सम्पर्कों में आती रही और दोनों पक्षों ने एक-दुसरे के संस्कारों को आदान -प्रदान के स्तर पर प्रभावित भी किया, किंतु मध्य काल में मुस्लिम शासन की अवधि में सामन्ती राजसत्ताओं के स्थापित होने के बाद इस क्षेत्र के संस्कृति जीवन में बाहरी आबादी का आवागमन बढ़ने के साथ सांस्कृतिकरण का एक नया दौर शुरू हुआ।

Scanned with CamScanner

सांस्कृतिक परंपरा

छोटानागपुर या झारखण्ड के सांस्कृतिक परिवर्तनों के पिछले पांच सौ वर्षों का इतिहास व्यापक उलट-फेर का काल रहा है और उसने झारखंडी संस्कृति की बुनियादी पहचान को कई स्तरों पर तोड़ा और मोड़ा हैं। इसी दौर में पुराने समाज-संगठन ढीले पड़े और मुस्लिम और ईसाई जोवन-दृष्टियों से उसका परिचय हुआ। इसलिए यह कहना इतिहास सम्मत होगा कि अपने प्रारंभिक उद्‌भवकाल में इस क्षेत्रीय संस्कृति में हिन्दू समाज-संस्कृति की कई विकृतियाँ और संस्कार जुड़े, किंतु इससे ज़्यादा बड़े पैमाने पर संस्कृति-संकरता के आक्रमण मुस्लिम और अंग्रेज शासन-काल में दिखाई पड़ते हैं।

यहाँ इस बात का उल्लेख अत्यंत महत्त्व का है कि आज के क्षेत्र की दो प्रमुख जनजातियों का प्रवेश इस क्षेत्र में इसी अवधि में हुआ है। ये जनजातीय समुदाय संताल और उराँव कबीलों के हैं जो मुंडाओं और सदानों के बाद उत्तर मध्यकाल और पूर्व आधुनिककाल के बीच सबसे बड़े जनसांख्यिक समीकरण बनाने से सफल हुए। उरांवो और संतालों के आगमन से पूर्व झारखण्ड के ये क्षेत्र असुरों और पहाड़िया जनजातियों के प्रभुत्व में थे।

भारत के इतिहास में सन 647 से 1200 ई. तक के काल को राजपूत काल भी कहा जाता है। छोटानागपुर राज पहली सदी में स्थापित हुआ माना गया है। गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद फणी मुकूट राय छोटानागपुर के प्रथम राजा हुए। सन 83 में 19 वर्ष की अवस्था में इन्हें शासन में बिठाया गया था। पश्चिम भार्म में तब कनिष्क का शासन (सन 78-102) था।

उरांवों के संबंध में यह कहा जाता है कि वे शेरशाह के रोहतास पर आक्रमण के बाद वहाँ से भागकर छोटानागपुर में आए। उनके रोहतास छोड़ने की तिथि 6 अप्रैल, 1538 बताई जाती है। इसे अगर आधार माना जाए तो उरांवों को छोटानागपुर में बसे लगभग साढ़े चार सौ वर्ष ही हुए हैं। इसी तरह छोटानागपुर में संतालों का आगमन अंग्रेजों के शासनकाल में ही संभव हुआ। आज जिसे संताल परगना क्षेत्र के नाम से जाना जाता है, उस क्षेत्र में संतालों का आगमन अभी सिर्फ़ दो सौ वर्षों पहले की बात है। इस क्षेत्र के निवासी पहाड़िया जनजाति के लोग हैं। ब्रिटिश साम्राज्य का शोषण एवं दमन जब बढ़ने लगा तब पहाड़िया लोगों ने विद्रोह किया। उस विद्रोह के दमन के लिए अंग्रेजों ने सन 1770 से 1790 के बीच संतालों का यहाँ लाकर वसाया था। इस प्रकार आज के झारखण्ड के क्षेत्र के दो बड़े जनजातीय समुदायों का इतिहास इस क्षेत्र के लिए अधिक पुराना नहीं है।

छोटानागपुर की जनजातीय संस्कृति में परिवर्तन की यह अवधि पुरानी पहचान के कारणों के नष्ट होने की दृष्टि से विशेष रूप से विचारणीय हो जाती है। रोहतास से राँची पहूंचकर भी उराँव संस्कृति भी नए दबावों में आकर कायाकल्प करने को विवश हुई। ब्रिटिश कानूनों के तहत जनजातियों की सम्पत्तिविषयक आवधारणा का सम्पूर्ण क्षरण हुआ। उनकी समूदयिकता की भावना में पतनोन्मूख प्रवृत्तियाँ विकसित हुई और उनके खूंटकट्टी गांवों की भूमि-व्यवस्था भंग हो गई तथा उसकी जगह निजी स्वामित्व की सम्पत्ति विषयक आवधारणा का विकास हुआ। धर्मांतरण ने भी स्वयं इन समुदायों के धीरे-धीरे फैलते-बढ़ते-संगठित होते एक प्रभावशाली वर्ग को अपनी संस्कृति की मूल जड़ों से काटकर आधुनिकीकरण और अलगाव के खाते में दर्ज कर दिया। इस नई स्थिति के कारण जनजातियों के समाज-संगठन कमजोर हुए, सामाजिकता की भावना में ह्रास आया, अखरा-धुककुडिया की परंपरा अवरूद्ध है ।

संदर्भ सूची

1. टेटे, वंदना (संदृ), आदिवासी दर्शन और साहित्य
2. सिंह, अविनाश कुमार, कथाक्रम, अक्टूबर-दिसम्बर 2011
3. गुप्ता, रमणिका (संदृ), युद्धरत आम आदमी, जुलाई-सितम्बर 2007,
4. मीणा, गंगा सहाय (संदृ), आदिवासी साहित्य विमर्श
5. मीणा, श्रवण कुमार (संदृ), समकालीन विमर्श : बदलते परिदृश्य
6. साहनी, भीष्म, कसौटी, अंक -1
7. गुप्ता, रमणिका, दलित हस्तक्षेप
8. उद्धृत, मीणा, हरिराम, आदिवासी दुनिया
9. मीणा, श्रवण कुमार (संदृ), समकालीन विमर्श : बदलते परिदृश्य
10. मीणा, गंगा सहाय (संदृ), आदिवासी साहित्य विमर्श, संपादक की कलम से
11. टेटे, वंदना, आदिवासी साहित्य : परंपरा और प्रयोजन
12. मीणा, गंगा सहाय (संदृ), आदिवासी साहित्य विमर्श
13. झारखंडी भाषा, साहित्य, संस्कृति अखड़ा के तत्वावधान में 14-15 जून, 2014 को राँची (झारखंड) में 'आदिवासी दर्शन और समकालीन आदिवासी साहित्य सृजन' विषय पर दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी संपन्न हुई । जिसमें आदिवासी समाज व साहित्य के बारे में सही समझ विकसित करने एवं उसका मूल्यांकन करने की बुनियादी शर्तों के रूप में पन्द्रह सूत्रीय तत्वों की पहचान करने की कोशिश की गई है । इसे ही 'राँची घोषणा-पत्र' के नाम से जाना जाता है ।
14. टेटे, वंदना (संदृ), आदिवासी दर्शन और साहित्य
15 मीणा, श्रवण कुमार (संदृ), समकालीन विमर्श : बदलते परिदृश्य।

Scanned with CamScanner

4-22

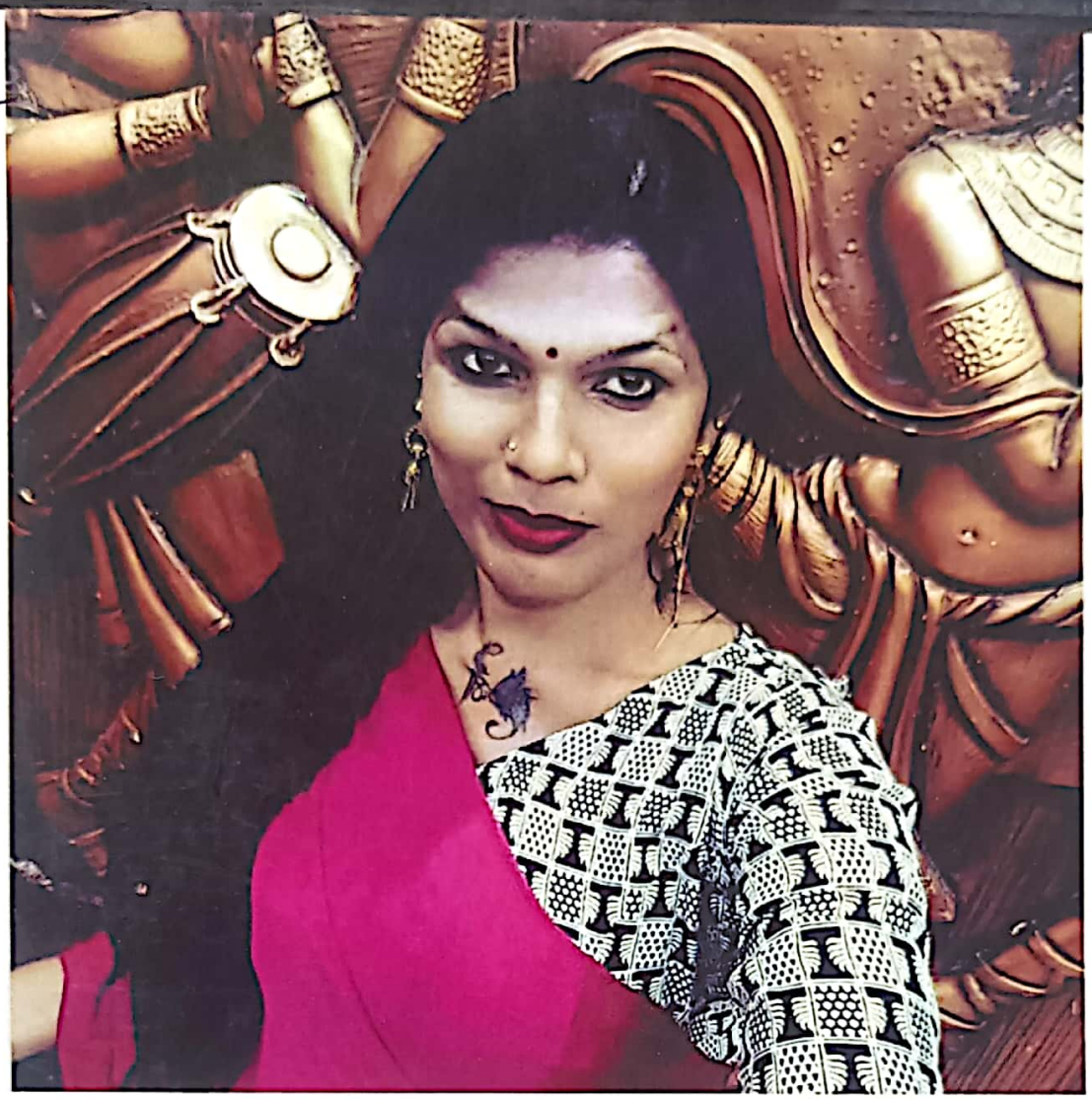

किन्नर विमर्श

अस्तित्व की तलाश में सिमरन

संपादक • नारायण कोवासा नारलाई | डॉ. राजपाल
सह संपादक • डॉ. बलराम गुप्ता

Scanned with CamScanner

अनुक्रम

	शुभकामना संदेश	iii
	सिमरन सिंह की कलम से शुभकामना...	iv
	संपादकीय	v
1.	किन्नरों को समान अधिकार **डॉ. सन्तोष खन्ना**	09
2.	सिमरन : सिसकता बचपन बिखरती जिन्दगी **सुमन टाँक** **प्रो॰ संतराम वैश्य**	15
3.	समाज से तिरस्कृत थर्ड जेंडर **प्रा.डॉ.विश्वनाथ किशन भालेराव**	19
4.	'अस्तित्व की तलाश में सिमरन' उपन्यास में निरूपित विभिन्न समस्याएं **डॉ. हेमल एम.व्यास**	25
5.	सिमरन उपन्यास में किन्नर आधारित में पारिवारिक जीवन की ललक और किन्नर जीवन **क्षत्रिय दीपिका जितेन्द्र**	34
6.	किन्नर समाज का यथार्थ **डॉ. लता अग्रवाल**	39
7.	करोना का दौर : छत्तीसगढ़ में किन्नरों की भूमिका **अलका यतीन्द्र यादव**	51
8.	तीसरी सत्ता की व्यथा : पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा **डॉ. संजीव कुमार विश्वकर्मा**	55
9.	किन्नर विमर्श : अस्तित्व की तलाश में सिमरन **प्रा. एम.जी. वसावे**	60
10.	इक्कीसवी सदी के उपन्यासों में किन्नर विमर्श **डॉ. महेश वसंतराव गागुर्डे**	64

Scanned with CamScanner

इक्कीसवी सदी के उपन्यासों में किन्नर विमर्श

प्रा. डॉ. महेश वसंतराव गागुर्डे
हिन्दी विभागाध्यक्ष, कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय
अक्कलकुवा महाराष्ट्र

समकालीन हिंदी कथा साहित्य प्रवृत्तियों की दृष्टि से आदिवासी विमर्श, स्त्री विमर्श, अल्पसंख्यक विमर्श, पर्यावरण विमर्श, दलित विमर्श के श्रेणी का सिद्धांत ढांचे में बंद कर रह गया है। भारतीय समाज में मौजूद एक विशेष वर्ग किन्नर समुदाय का जीवन भी वर्तमान परिदृश्य में कथा साहित्य का प्रमुख अंग हो गया है।

प्राचीन काल से ही यह समुदाय अपना जीवन समाज के अन्य वर्गों के साथ येन-केन प्रकरणों बता रहा है। इस समुदाय के जीवन की विषमताओं और संगठनों की ओर संस्कृत समाज का ध्यान साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि से बहुत समय तक नहीं गया। समुदाय साहित्य की मुख्यधारा में अपनी पहचान दर्ज कराने में असमर्थ रहा।

किन्नरों का उल्लेख विविध संदर्भों में भारतीय पौराणिक साहित्य में प्राचीन काल से होता आया है। रामायण में राम-रावण युद्ध में राम की सेना में वानर के साथ कोल, किरात, किन्नर और भी आदि जनजातियों की सेना भी सम्मिलित थी। किन्नर एक वन्य जनजाति के रूप में रामायण महाकाव्य में उल्लेखित है किंतु यह नपुंसक (हिजड़ा) समुदाय नहीं था यह बलशाली और वीरता संयुक्त जनजाति थी।

संविधान में कानूनी तौर पर इन्हें अधिकार तो काफी पहले ही मिल चुके थे। यह बस उसके उचित क्रियान्वयन के लिए संघर्षशील थे परंतु इन सब के बीच 'किन्नर समुदाय' अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहा था। उसे लोगों द्वारा अपने को समाज, परिवार आदि में स्वीकार कराने को लेकर संघर्ष करना था। उसे कोई सामाजिक, राजनीतिक, कानूनी अधिकार नहीं प्राप्त थे। परिवार में किन्नर के लिए कोई स्थान नहीं था।

शिक्षा जगत में इसका कोई वजूद नहीं था। परंपरा से जकड़े स्त्री पुरुष

मानसिकता वाले समाज में वे अपनी लैंगिक पहचान के लिए लड़ रहे थे। रोजगार का कोई अवसर नहीं था फिर भी अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ने को यह वर्ग तैयार था लेकिन वर्षों तक कानून द्वारा मान्यता ही नहीं दी गई हो जिनका कानूनी रूप में कोई अस्तित्व ही नहीं स्वीकारा गया हो। उनके लिए अपने अस्तित्व की तलाश करना कितना कठिन हो सकता है इसकी केवल कल्पना ही की जा सकती है।

हिंदी साहित्य में इन्हीं वर्गों का विशेष रूप में केंद्र में रखकर कुछ उपन्यासों की रचना की गई। जिनमें यनदीप, तीसरी ताली, गुलाम मंडी, मैं पायल, कथा किन्नर, पोस्ट बॉक्स बॉक्स नं0 203, नाला सोपारा, दरमियां, आधा आदमी, मेरे हिस्से की धूप, शापित किन्नर, अस्तित्व की तलाश में सिमरन आदि प्रमुख उपन्यास है। इन उपन्यासों द्वारा किन्नर जीवन में आने वाली विभिन्न कठिनाइयों एवं उनके संघर्ष को साहित्यिक स्तर पर को बड़ी ही प्रमुखता से उठाया गया है। एक और जहां उन उपन्यासों में परिवार द्वारा तिरस्कार दिखाया गया है वहीं दूसरी ओर यह भी दिखाया गया है कि जो परिवार इन्हें प्रेम करते हैं। अपने पास रखना चाहते हैं, उन्हें समाज मजबूर कर देता है कि मैं अपने बच्चों को त्याग दें। अस्तित्व की तलाश में सिमरन उपन्यास डॉ. मोनिका देवी द्वारा रचित है इस उपन्यास में किन्नर सिमरन के जीवन का यथार्थ वर्णन किया गया है "आर्थिक रूप से भी शोषण होता है जब तक पैसे पास होते हैं तब तक हर रिश्ता हमारे साथ होता है।"[1]

तब जिंदगी तमाशा बन जाती है कोई भी आ कर गाली-गलौज देकर निकल जाता है। सिमरन की गुरु बेला उसकी रुग्णावस्था और आर्थिक विपन्नता से अवगत होते हुए भी प्रति महा उससे पाँच हजार रुपये लेने में संकोच नहीं करती थी। किन्नर दिवाली मांगने जाते हैं, वहां अधेड़ अवस्था का दुकानदार कुछ देता नहीं पर चिढ़ाता है "तुम लोगों को कौन पैदा करता है किस लिए पैदा हो गए कमाकर तो खाते नहीं मुंह उठाकर मांगने चल देते हो" ।[2] इन लोगों पर कोई सहजता से विश्वास भी नहीं करता और कोई इन्हें अपने घर में नौकरी भी नहीं देता।

कुछ ऐसी ही परिस्थितियां चित्रा मुद्गल पोस्ट 'बॉक्स नंबर 203 नालासोपारा' में भी देखने को मिलती है। विनोद एक किन्नर है। वह अपनी बा को प्राणों से प्यारा है, किंतु वह अपने परिवार को छोड़कर किन्नरों के बीच रहने के लिए मजबूर है, परिवार के अन्य सदस्य तथा समाज ने यह दूरियां बना दी है।

विनोद अपने पत्र में अपने मां की पीड़ा को अभिव्यक्त करते हुए बा को लिखता है, "मेरी सुरक्षा के लिए कानूनी कार्यवाही क्यों नहीं की तूने मेरी बा? तूने और पप्पा ने मिलकर मुझे कसाईयों के हाथ मासूम बकरी सा सौंप दिया, जिस नरक में तूने और पप्पा ने धकेला है मुझे, वह एक अंधा कुआं है। जिसमें सिर्फ सांप-बिच्छू रहते हैं। सांप बिच्छू बनकर पैदा नहीं हुए होंगे। बस इतना कोई नहीं उन्हें आदमी

Scanned with CamScanner

नहीं रहने दिया"।

प्रदीप सौरभ कृत "तीसरी ताली" उपन्यास में आनंदी आंटी की पुत्री निकिता एक ऐसी ही उदाहरण है। आनंदी आंटी समाज की परवाह न करते हुए अपनी पुत्री को पढ़ाना चाहता है। मैं इसके लिए एक संभव प्रयास करती है। किंतु प्रत्येक स्थान पर निराशा ही हाथ लगती है फिर चाहे वह लड़कों का स्कूल हो अथवा लड़कियों का। दोनों जगह से ही जवाब मिलता है कि जेंडर स्पष्ट न होने के कारण दाखिला नहीं मिल सकता। उनका कहना था। स्कूल केवल सामान्य बच्चों के लिए है, बीच के बच्चों का दाखिला करने से स्कूल का माहौल खराब हो जाएगा। परिवार को स्वीकार करता है सामान्य बच्चों की पालन पोषण करना चाहता है तो इसमें समाज बाधा बन जाता है। नीरजा माधव ने अपने उपन्यास 'यमदीप' में भी यही सवाल नाच बीवी के माध्यम से उठाने का प्रतिनिधित्व करती है नंदरानी के अभिभावक को प्रेम करते हैं। नंदरानी की माता उसे पढ़ा-लिखाकर आत्मनिर्भर बनाना चाहती थी, किंतु वही सवाल मेहताब गुरु उठाते हैं कि कभी हिजड़े को पढ़ते लिखते देखा है या पुलिस में, कलेक्ट्री में अथवा मास्टरी में कहीं उन्हें देखा है? वे कहते हैं इनकी दुनिया बस यही है। उनके अनुसार इन तृतीय लिंगी के समर्थन हेतु कोई आगे बढ़कर नहीं आएगा कि हिजड़ों को पढ़ाओ-लिखाओ और नौकरी दो।

महताव गुरु के माध्यम से लेखिका ने समाज द्वारा इनके प्रति अपनाए गए तिरस्कृत व्यवहार को दिखाने का प्रयत्न किया है। इन उपन्यासों में विभिन्न तथ्यों के माध्यम से किन्नरों से संबंधित अनेक महत्त्वपूर्ण प्रश्नों को उठाया गया है। जैसे प्रशासन का इनके प्रति व्यवहार समाज की मानसिकता किन्नर समाज के प्रति अंधविश्वास, रोजगार की समस्या, शिक्षा संबंधित समस्या इत्यादि।

किन्नर विमर्श हिंदी साहित्य में अपनी परिपक्व अवस्था में है। लोगों की मानसिकता अभी इन्हें स्वीकारने में हिचकी जा रही है। फिर भी कुछ साहित्यकारों ने किन्नर विमर्श को लेकर सजग हुए हैं। और निरंतर अपना योगदान दे रहे हैं। इस समकालीन साहित्यकारों ने किन्नरों के जीवन की ओर गंभीरता से ध्यान दिया है। और साहित्य के माध्यम से ही आज किन्नर समुदाय आगे बढ़ रहा है। इनकी आवाज जन-जन तक पहुंच रही है वर्तमान समय में सबसे बड़ी आवश्यकता है। इनको जिस शिक्षा के प्रति जागरूक करना। जिससे यह मुख्यधारा में शामिल हो सके।

आज कुछ किन्नर पढ़-लिखकर नौकरी कर रहे हैं सरकार का ध्यान भी इनकी और साहित्य के माध्यम से ही आया है। आगे भी बहुत कार्य होते रहेंगे। इन सब का श्रेय सभी सरकारों को ही जाता है। अभी इस विषय पर अधिक कार्य किए जाने की आवश्यकता है।

संदर्भ सूची

1. डॉ. मोनिका देवी : अस्तित्व की तलाश में सिमरन, पृ.सं. संख्या -97
2. डॉ. मोनिका देवी : अस्तित्व की तलाश में सिमरन, पृ.सं. 102
3. चित्रा मुद्गल, पोस्ट बॉक्स नं0 203 नाला सोपारा पृ.सं. 111

Scanned with CamScanner